वेदांत दर्शन और शिक्षा

वेदांत में कही गयी समस्त बातों का मूल उपनिषद है। वेदांत वे शास्त्र हैं जिनके लिए उपनिषद ही प्रमाण हैं। बहुत से विद्वान मानते हैं कि वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के गूढ़ एवं विस्तृत दार्शनिक चिंतन का अंतिम सार ही वेदांत दर्शन है। वेदांत शास्त्र के वे ही सिद्धांत मान्य हैं, जिनके साधक उपनिषद के वाक्य है। इस दृष्टि से उपनिषद को वेदांत दर्शन का अंग मानना चाहिए। उपनिषदों के आधार पर ही बादरायण मुनि ने ब्रह्म सूत्रों की रचना की। बादरायण मुनि का ब्रह्मसूत्र वेदांत दर्शन का आदि ग्रंथ है। ब्रह्मसूत्र पर अनेक विद्वानों द्वारा भाष्य ग्रंथ लिखे गए जिसमें अपने अपने दृष्टिकोण से ब्रह्मसूत्र में प्रतिपादित वेदांत की व्याख्या की गई है। इन व्याख्याओं से वेदांत की अनेक शाखाओं–उपशाखाओं का विकास हुआ, जिनमें प्रमुख हैं–

1. शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत शारीरिक भाष्य 9वी शताब्दी
2. रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद. श्रीभाष्य 12वी शताब्दी
3. माध्वाचार्य का द्वैतवाद। पूर्णप्रज्ञ भाष्य 13वी शताब्दी
4. निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद वेदांतपारिजात भाष्य 13वी शताब्दी
5. श्रीकंठ का शैवविशिष्टाद्वैतवाद शैव भाष्य 13वी शताब्दी
6. श्रीपति का वीरशैवविशिष्टाद्वैतवाद श्रीकर भाष्य 14वी शताब्दी
7. वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद। अणु भाष्य 16वी शताब्दी

> वेदांत शाखा के आदि प्रवर्तक शंकराचार्य(शंकर) माने गए हैं तथा शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत भारतीय चिंतन धारा का चरमोत्कर्ष है। यहां पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद के संदर्भ में शिक्षा की विवेचना की जाएगी।

शंकर एकतत्ववादी हैं, वे ब्रह्म को ही एकमात्र सत्ता मानते हैं। उनका ब्रह्म अनादि, अनंत और निराकार है। वह प्रकाश की तरह ज्योतिर्मय है, दिक और काल की सीमा से परे है। आत्मा को शंकर ब्रह्म का अंश मानते हैं। जीव के विषय मे शंकर का मत है कि शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्म फल का भोगता आत्मा ही जीव है। शंकर जगत को नाशवान मानते हैं और उनकी दृष्टि से जगत एवं मानव जीवन की सत्ता व्यवाहरिक है। अविद्या के कारण ब्रह्म नाना रूपात्मक के रूप में दीखता है परंतु ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत मिथ्या है।

शंकर ने ज्ञान को दो भागों में बांटा है– अपरा (लौकिक या व्यवाहरिक) तथा परा (आध्यात्मिक)। लौकिक ज्ञान के द्वारा मनुष्य जीवन के अंतिम उद्देश्य, मुक्ति, को प्राप्त नही कर सकता। आत्मा अज्ञान के वशीभूत होकर बन्धनग्रस्त हो जाती है। जब तक जीव में विद्या का उदय नही होगा तब तक वह संसार के दुखों का सामना करता रहेगा। अविद्या का नाश होने के साथ ही साथ जीव के पूर्व संचित कर्मों का अंत हो जाता है और इस प्रकार वह दुखों से छुटकारा पा जाता है। अविद्या का अंत ज्ञान से ही संभव है। शंकर की दृष्टि में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं गीता की तत्वमीमांसा ही सच्चा ज्ञान है। इस ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वेदांत के अध्ययन के लिए श्रवण (गुरु के उपदेश सुनना), मनन(उपदेशों पर युक्तिपूर्वक विचार करना) और निदिध्यासन (प्राप्त ज्ञान का नित्य प्रयोग) को शंकर आवश्यक मानते हैं। पराज्ञान के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन के साथ साधन चतुष्टय (नित्य–अनित्य, वस्तु विवेक, भोग विरक्ति, शमदमादि संयम और मुमुक्षकत्व) को आवश्यक माना गया है।

शंकर के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के बाद भी शरीर रह सकता है, क्योंकि ये प्रारब्ध संचित कर्मों का फल है। परंतु संसार का मिथ्या प्रपंच मुक्त आत्मा के सामने रहते हुए भी सांसारिक विषयों के लिए उसे कोई तृष्णा नही होती। वह संसार मे रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहता है। इसी को शंकर ने जीवन मुक्ति का नाम दिया है। तत्व ज्ञान से

संचित कर्म का क्षय तथा संचीययमान (नए कर्म) का निवारण होता है जिससे पुनर्जन्म के बंधन से मुक्ति मिल जाती है परंतु प्रारब्ध का निवारण नही किया जा सकता। उसका फल भोगने के लिए शरीर रह जाता है और प्रारब्ध की शक्ति समाप्त होने पर उसका भी अंत हो जाता है। जब स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अंत हो जाता है तो उसे विदेहमुक्ति कहते है।

वेदांत दर्शन के सिद्धांत

वेदांत दर्शन का मानना है कि यह ब्रह्मांड ब्रह्म द्वारा ब्रह्म से निर्मित है। आत्मा ब्रह्म का अंश है। मनुष्य का विकास उसके संचित प्रारब्ध और संचीयमान कर्मों पर निर्भर करता है। मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है, मुक्ति के लिए ज्ञान और ज्ञान के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन आवश्यक है। उत्तम श्रवण, मनन और निदिध्यासन के लिये साधन चतुष्टय आवश्यक है, जो कि निम्नलिखित हैं–

- नित्य–अनित्य वस्तु विवेक अर्थात नित्य(आत्मा, परमात्मा,ब्रह्म) तथा अनित्य(शरीर,पदार्थ,जगत) वस्तुओं के बीच भेद करने तथा ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता को समझने का विवेक जागृत करना।
- भोग विरक्ति अर्थात लौकिक एवं अलौकिक किसी भी प्रकार के भोगों की इच्छा न करना।
- शमदमादि संयम अर्थात शम(मन का संयम), दम(इन्द्रियों पर नियंत्रण), उपरति(यज्ञ आदि विहित कर्मों का त्याग), तितिक्षा(सुख दुख सहन करने की शक्ति, समाधान(शब्द आदि विषयों से निगृहीत मन को श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा उनके उपकारक विषयों के चिंतन में निरंतर लगाए रखना), श्रद्धा(ज्ञान तथा ज्ञानी गुरुजनों के प्रति श्रद्धा का पालन)।
- मुमुक्षकत्व अर्थात मोक्ष प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प करना।

शिक्षा का संप्रत्यय एवं उद्देश्य

शंकर की दृष्टि में शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाये अर्थात 'सा विद्या या विमुक्तये'। वेदांत के अनुसार शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य विद्यार्थी को अज्ञान से मुक्त कर ज्ञान की प्रतीति करवाना है, जिससे की वह विद्या एवं अविद्या में विवेकपूर्ण भेद कर सके और सत्य और मिथ्या का अंतर समझ सके और अपने अंतर्निहित अनंत ज्ञान व शक्ति को पहचान सके। शंकर ने मनुष्य जीवन के दो पक्ष माने हैं– अपरा(व्यवाहरिक) एवं परा(आध्यात्मिक)। शिक्षा के द्वारा वे मनुष्य के दोनों पक्षों का विकास, मुक्ति के उद्देश्य को ध्यान में रखकर, करने पर बल देतें हैं। व्यवाहरिक पक्ष में वे मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास के साथ–साथ उसके वर्ण कर्म की शिक्षा को भी सम्मिलित करते हैं, और आध्यात्मिक पक्ष के लिए उन्होंने ज्ञान को आवश्यक माना है और ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधन चतुष्टय का पालन अनिवार्य बताया है।

वेदांत दर्शन और पाठ्यक्रम

अद्वैत वेदांत की दृष्टि से पाठ्यक्रम को दो भागों में विभक्त किया जाता है:

- पारमार्थिक विषय जिसके अंतर्गत आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान सम्मिलित किया जाता है। पारमार्थिक ज्ञान, सतत् परिवर्तनशील व्यवाहरिक ज्ञान की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है।साहित्य, दर्शन, कला तथा धर्म आत्मज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः पाठ्यक्रम में इनको उच्च स्थान मिलना चाहिए।

- व्यवाहरिक विषय जिसके अंतर्गत संसार मे सुचारू रूप से समायोजित होने के लिए आवश्यक ज्ञान का समावेश किया जाता है, जैसे भाषा, गणित, भौतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि।

शंकर की दृष्टि से मनुष्य–मनुष्य में भेद होता है और ये भेद कर्म जनित है व जगत नियंता का विधान है। वे वर्ण के अनुसार अलग–अलग कर्मों में विश्वास रखते थे और अपने कर्मों का कुशलतापूर्वक संपादन करने हेतु पृथक शिक्षा पाठ्यचर्या का विधान करने के पक्ष में थे। परंतु पराविद्या के लिए सबको समान ज्ञान एवं समान क्रियाएं करने पर बल देते थे।

शिक्षण विधियां

ज्ञान प्राप्ति के उपकरण– शंकर ने ज्ञान प्राप्ति के उपकरणों को दो भागों में बांटा है, वाह्य उपकरण एवं आंतरिक उपकरण। वाह्य उपकरणों में इंद्रियां आती हैं, इन्हें ज्ञान प्राप्ति का प्राथमिक उपकरण कहा गया है तथा आंतरिक उपकरणों में मन, बुद्धि, अहंकार और आत्मा। उनका स्पष्टीकरण है कि इंद्रियां किसी वस्तु या क्रिया के प्रति तभी क्रियाशील होती हैं जब मन उनके तथा वस्तु अथवा क्रिया के बीच संयोजन करता है। बुद्धि इसमें काट छांटकर उसे अहं से जोड़ती है और तब वह ज्ञान और क्रिया आत्मसात होती है।

ज्ञान प्राप्ति के स्रोत– शंकराचार्य ने ज्ञान प्राप्ति के तीन स्रोत बताए हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द।

प्रत्यक्ष विधि द्वारा इन्द्रियों की क्रिया के माध्यम से पदार्थ की सीधी चेतना होती है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष में पदार्थ तथा इन्द्रियों का वास्तविक संपर्क होता है। प्रत्यक्ष विधि द्वारा बालकों को शब्द, प्रत्यय, प्रतीक आदि का निर्माण करना सिखाया जाता है। सभी प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन अध्यापन प्रत्यक्ष विधि द्वारा किया जाता है।

अनुमान में वे पूर्व अनुभवों के आधार पर नए अनुभवों को तर्क द्वारा स्वीकार करने की बात कहते हैं।

शब्द के रूप में वे निगम(वेद) और आगम(तंत्र) ग्रंथों को श्रेष्ठ मानते हैं। तर्क का अर्थ है बौद्धिक कसौटी, अतः जब तक इन्द्रिय प्रत्यक्ष , अनुमान और शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान तर्क की कसौटी पर नही कसा जाता तब तक उसके विषय में सत्य असत्य होना प्रमाणित नही हो सकता।

ज्ञान प्राप्ति के साधन– शंकराचार्य के द्वारा उपनिषदों में वर्णित ज्ञान प्राप्ति के तीन साधनों का वर्णन किया गया है– श्रवण अर्थात वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं गीता आदि ग्रंथों का गुरुमुख द्वारा श्रवण अथवा उनका पठन –पाठन सम्मिलित हैं।

मनन अर्थात श्रवण अथवा अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान पर चिंतन करना। ज्ञान को समझने के लिए उसे युक्ति पूर्ण ढंग से परखना आवश्यक है।

निदिध्यासन अर्थात् प्राप्त ज्ञान का नित्य प्रयोग करना।

वेदांत और अनुशासन

अनुसाशन का शिक्षा में अत्याधिक महत्व है। बिना अनुशासन के एकाग्रता तथा बिना एकाग्रता के अध्ययन संभव नही है। वेदांत में बाल प्रकृति की चार अवस्थाएं बताई गई हैं–

- **क्षिप्त–** प्रथम अवस्था को क्षिप्त कहते हैं। यह अंतःकरण की चंचल अवस्था है। इस अवस्था में बच्चा अपनी इन्द्रियों के अधीन रहता है और अपना ध्यान केंद्रित नही कर पाता।
- **मूढ़–** दूसरी अवस्था मूढ़ है। इस अवस्था में व्यवहार की नियामक इंद्रियां होती हैं इन्द्रियों को सुखद

लगने वाला कार्य किया जाता है अध्ययन के लिए यह सबसे प्रतिकूल स्थिति है, और अनुशासन की दृष्टि से इसे निम्नतम माना जाता है।

- **विक्षिप्त–** इस अवस्था में सीमित रूप से इन्द्रियों पर नियंत्रण होने लगता है। बालक 'स्व' की शक्ति से अध्ययन में ध्यान लगाता है। ध्यान अल्पकालिक होता है, लंबे समय तक अवधान रखना कठिन हो जाता है। 'स्व' तथा 'अ स्व' के मध्य अंतर्द्वन्द की स्थिति विक्षिप्तावस्था कहलाती है।
- **एकाग्रता–** चौथी अवस्था एकाग्रता की होती है। इसमें इंद्रियां, मन, बुद्धि आदि सभी पर आत्मा का नियंत्रण होता है। व्यक्ति अपने आपका नियामक और नियंता होता है। इस स्थिति में व्यक्ति जो चाहता है वैसा व्यवहार करता है। इन्द्रियों की वृत्ति एवं मानसिक विकार उसे भ्रमित नही कर सकते। उसका सहज आचरण आत्मा की प्रकृति के अनुरूप हो जाता है। वह सहज ही सत्यम, शिवम, सुंदरम से युक्त हो जाता है। यही अनुसाशन की उच्चतम स्थिति कहलाती है।

बालक को अनुशासित रखने में अध्यापक के मार्गदर्शन तथा ज्ञान से सहायता मिलती है। इससे बालक को सदाचारी बनाने में सहायता मिलती है और अनुशासन की स्थापना में भी सहायता मिलती है।

वेदांत और शिक्षक

वेदांत के अनुसार शिक्षक को जीवन मुक्त होना चाहिए क्योंकि बंधन से जकड़ा हुआ तथा अविद्या से ग्रसित व्यक्ति दूसरों को अविद्या के बंधन से कैसे छुड़ा सकता है। ज्ञान तथा आचरण की दृष्टि से शिक्षक को इतना पूर्ण होने चाहिए कि विद्यार्थी उसे ज्ञान के साक्षात रूप में स्वीकार कर सके। अध्यापक का व्यक्तित्व एवं चरित्र ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थियों के मन में उसके लिए श्रद्धा का भाव उत्त्पन्न हो। अध्यापक की भाषा, रहन–सहन, व्यवहार आदि सभी बातें विद्याथियों के लिए अनुकरणीय होनी चाहिए। अध्यापक का मन स्वस्थ हो, वह संयमी हो तथा उसके मन में अपने छात्रों के लिए प्रेम हो। वेदांत के अनुसार शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विद्यार्थी के व्यक्तित्व का आदर करे और उन्हें आत्मवत समझें और धीरे–धीरे सभी छात्रों में एकता देखने का अभ्यास करें।

वेदांत और छात्र संकल्पना

वेदांत सभी छात्रों को समान रूप से देखता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार प्रत्येक बालक अनंत ज्ञान एवं शक्ति का भंडार है। उसमें जो शारीरिक, मानसिक एवं बौध्दिक भिन्नताएं दिखाई देती हैं, वह कर्म जनित हैं। प्रत्येक बालक का स्वतंत्र अस्तित्व है, उसका शरीर और आत्मा दोनों ही ईश्वर निर्मित हैं तथा दोनों ही पवित्र हैं।वेदांत के अनुयायी शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बालक के व्यक्तित्व का आदर करे। प्रत्येक छात्र की स्वतंत्र इच्छाशक्ति होती है जिसका सम्मान होना चाहिए। शंकर के अनुसार ब्रह्म ज्ञान के इच्छुक विद्यार्थियों को साधन चतुष्टय का पालन करना चाहिए।

आज के युग में अनुशासन स्थापित करने के लिए वेदांत को आदर्श बनाना होगा। वेदांत ने स्वतंत्रता और अनुशासन को एक दूसरे का पूरक माना है। शिक्षा को सही मार्ग पर ले जाने के लिए समाज में आत्मसंयम स्थापित करना होगा और वेदांत में आत्मसंयम को अत्याधिक महत्व प्रदान किया गया है।शिक्षा का कार्य व्यक्ति को मनुष्यत्व की प्राप्ति कराना है।शिक्षा के इन आदर्शों को प्राप्त करने में वेदांत का अत्याधिक योगदान हो सकता है।

संदर्भ

- ओड़, लक्ष्मीकांत के, शिक्षा की दार्शनिक पृष्टभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2007
- मिश्र, महेंद्र कुमार, भारतीय दर्शन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2009
- लाल, रमनविहारी, शिक्षा के दार्शनिक आधार, रस्तोगी प्रकाशन, आगरा।